वेदों में मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष का स्वरुप दो प्रकार का है। दुःखों से छूट जाना पहला स्वरूप है और आनंद प्राप्त करना दूसरा स्वरूप है। पहले स्वरूप के पक्षधरों का मानना है कि दुःखों के अत्यन्त भाव में ही आनन्द भरा हुआ है। उनका कहना है कि सुषुप्ति इसका नमूना है। इसीलिए सांख्य में कहा गया है कि – सुषुप्ति-समाधि-मुक्तिषु ब्रह्मरूपता "अर्थात समाधि और सुषुप्ति आदि की भाँति ही मोक्ष में ब्रह्मरूपता होती है। दूसरी ओर आनन्द के पक्षवालों का कहना है कि सुषुप्ति में केवल दुःखों का ही तिरोभाव होता है। इसमें आनन्द की प्राप्ति नहीं मिलती। जागने पर मनुष्य का यह कहना है कि अच्छी नींद आई वह आनन्द का ही सूचक है। क्योंकि सुषुप्ति के समय न तो सुखों का ही भान होता है और न दुःखों का ही। यदि सुखों और दुःखों का अत्यन्ताभाव ही आनन्द है, तो फिर क्लोराफार्म सूंघे हुए मनुष्य और मरें हुए मुर्दे सब में आनन्द ही माना जाना चाहिए। पत्थर, मिटटी, तथा दीवारों को मुक्त ही मानना चाहिए। किन्तु मुक्ति का अर्थ आनन्द प्राप्त करना है, इसलिए मोक्ष का यह स्वरूप गलत है। मोक्ष का दूसरा स्वरूप आनन्द है। पर बिना दुःखों की निवृत्ति के आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता – इसलिए मोक्ष का सच्चा स्वरूप दुःखों की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति ही है। अतः यहाँ पर हम दुःखों की निवृत्ति और आनन्द पर गम्भीरता से विचार करते हैं।

दुःखों की निवृत्ति का अर्थ प्रकृति बंधन अर्थात मायावेष्टन से छूट जाना है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरों से जब छुटकारा मिल जाता है तब दुःखों का अत्यन्ताभाव हो जाता है। न्यायशास्त्र में लिखा है कि दुःखों का मूल कारण शरीर ही है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आदि जितने भी दुःख होते हैं – वे सब शरीर के द्वारा ही होते हैं। इसलिए शरीर के अत्यन्त भाव से दुःखों का अत्यन्त भाव हो जाता है। लेकिन केवल दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति से ही आनन्द की प्राप्ति नहीं हो ज़ाती। अतः आनन्द क्या है? इसकी गहराई के ओर चलते हैं।

आनन्द को दो भागों में बाटा जा सकता है – पहिला तो यह है कि मुझे किसी प्रकार का दुःख न हो और मैं ज्ञानमुक्त होकर संसार का और अपने आपका रसास्वादन करूँ। दूसरा प्रकार यह है कि मुझे किसी भी प्रकार का दुःख न हो और मैं परमेश्वर को प्राप्त करके उसका रसास्वादन करूँ। इन दोनों प्रकारों में पहिले प्रकार में संसार और अपने आपके रसास्वादन की लालसा है और दूसरे में परमात्मा के रसास्वादन की अभिलाषा है। अतः देखना यह है कि इन दोनों में से कौनसा प्रशस्त है?

इनमें संसार के रसास्वादन में आनन्द नहीं है। क्योंकि संसार का रसास्वादन बिना शरीर के हो नहीं सकता और शरीर में ही दुःखों का घर है। इसलिए दुःखपाई शरीर के साथ जो थोडा बहुत संसार का सुख अनुभूत होता है, वह दुःमिश्रित होने के कारण कष्टकर ही होता है, इसलिए संसार के रसास्वादन का नाम आनन्द नहीं हो सकता। रहा अपने नाम का रसास्वादन, सो वह भी आनन्द नहीं हो सकता। क्योंकि एक तो अपने आपसे कभी भी कोई शक्ति अधिक तृप्त नहीं रह सकता, दूसरे अपने आपके अनुभव करने के लिए मस्तिष्क की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा अपने आपका अनुभव होता है। जब तक मस्तिष्क न हो तब तक विचार ही उत्पन्न नहीं हो सकते, इसलिए यह विचारानन्द भी शरीर के आश्रित होने से सदैव दुःखमिश्रित ही रहता है। तीसरी बात जो अपने आपमें आनन्द को बिगाडने वाली है, वह आत्मा की बनावट अर्थात उसका स्वभाव है। उसके स्वभाव में इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञान तथा प्रयत्न सदैव बने रहते हैं। इसलिए वह शान्ति से अपने आपका रसास्वादन कर ही नहीं सकता। यही कारण है कि अपने आपका रसास्वादन भी आनन्द नहीं कहला सकता। अब रही दूसरे प्रकार के आनन्द की बात। यह आनन्द परमात्मा के सकाश में, उसके सम्मेलन में और तदाकार हो जाने में बतलाया जाता है – जो ठीक प्रतीत होता है। क्योंकि शुद्ध स्थाई आनन्द के लिए शुद्ध और स्थाई आनन्द देने वाले पदार्थ की ही आवश्यकता होती है। इसलिए उपनिषद में कहा गया है कि "तव्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यव्दिभाति" अर्थात जो आनन्द रूप अमृत है उसको विज्ञान से ही विव्दान देखते हैं। इसका कारण यह है कि वह प्रकृतिबंधन से रहित पूर्ण ज्ञानी और सर्व व्याप्ति है। अतः उसमें आनन्द के अतिरिक्त दुःखों की सम्भावना नहीं है।

दूसरा कारण आनन्द का यह है कि परमेश्वर की प्राप्ति से सब शंकाएँ निवृत्त हो जाती हैं और संसार की कोई बात ज्ञातव्य नहीं रहती –

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिनदृष्टे परावरे॥ मु. उ. २/२/८

इसलिए इसमें व्दैत अव्दैत का झगडा करना व्यर्थ है। किन्तु देखना यह है कि वेदों और उपनिषदों में किस प्रकार उसके सर्म्पक और सम्मेलन से आनन्द बतलाया गया है। यहाँ पर कुछ वाक्य प्रस्तुत हैं –

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति। आश्चर्यवत्पश्यति वीतशोकः॥
ये पश्यन्तियतयः क्षीणदोषाः। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः॥
तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम। तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥
यदा पश्यति पश्यति रुक्मवर्णम्। जुष्टं यदा पश्यत्यन्य मीशम्॥
तमक्रतुःपश्यति वीतशोकः। दृश्यते त्वग्रया बुध्दया॥
ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। अयमात्मा ब्रह्म॥ (उपनिषव्दचन)

इन उपनिषव्दाक्यों में परमात्मा की प्राप्ति, दर्शन, सम्मेलन, और उसके साथ एकीकरण का वर्णन है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उसकी प्राप्ति से ही आनन्द मिल सकता है। इसलिए प्रकृतिबंधन से छूटकर अर्थात जन्म मरण के चक्कर से मुक्त होकर परमात्मा की प्राप्ति का ही नाम मोक्ष है। और यही मोक्ष का वैदिक और शुद्ध स्वरूप है।

धनश्याम लाल माथुर